कॉलेज/विभाग का नाम: मधेपुरा कॉलेज मधेपुरा बीएड विभाग

विषय: ***Childhood and Growing Up (***बाल्यावस्था एवं उसका विकास***)***

विषय वस्तु: सामाजिक भावनात्मक और भाषा विकास

इकाई ***4***

1. विषय: सामाजिक विकास का अर्थ क्या है**?**

   सोरेनसन ने सामाजिक विकास को परिभाषित करते हुए लिखा है- "सामाजिक वृद्धि और विकास से तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली प्रकार चलने की बढ़ती हुई योग्यता से है।" हरलॉक (1978) के अनुसार- "सामाजिक विकास से तात्पर्य सामाजिक प्रत्याशियों के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता सीखने से होता है।" इस प्रकार सामाजिक विकास में लगातार दूसरों के साथ अनुकूलन करने की योग्यता में वशिद्ध पर जोर दिया जाता है। मनुष्य की सामाजिक परिस्थितियां बदलती रहती है। इस परिवर्तन के साथ व्यक्ति को बराबर बदलना होता है।

   शेश्वावस्था में सामाजिक विकास

   यद्यपि जन्म के समय शिशु सामाजिक नहीं होता है परंतु दूसरे व्यक्तियों के प्रथम संपर्क से ही उसके समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है, जो निरंतर आजीवन चलती रहती है। सामाजिक विकास ढंग से होता है-

- प्रथम माह- प्रथम माह में शिशु किसी व्यक्ति या वस्तु को देखकर कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया नहीं करता है। वह तीव्र प्रकाश तथा ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया अवश्य करता है। वह रोने तथा नेत्रों को घुमाने की प्रतिक्रियाएं करता है।

- द्वितीय माह- दूसरे माह में शिशु आवाजों को पहचानने लगता है। जब कोई व्यक्ति शिशु से बातें करता है या ताली बजाता है या खिलौना दिखाता है तो वह सिर घुमाता है तथा दूसरों को देखकर मुस्कुराता है।

- तृतीय माह- तीसरे माह में शिशु मां को पहचानने लगता है। जब कोई व्यक्ति शिशु से बातें करता है या ताली बजाता है तो वह रोते-रोते चुप हो जाता है।

- चतुर्थ माह- चौथे माह में शिशु पास आने वाले व्यक्ति को देख कर हंसता है, मुस्कुराता है। जब कोई व्यक्ति उसके साथ खेलता है, तो वह हंसता है तथा अकेला रह जाने पर रोने लगता है।

- पंचम माह- पांचवें माह में शिशु प्रेम व क्रोध के व्यवहार में अंतर समझने लगता है। दूसरे व्यक्ति के हंसने पर भी वह हंसता है तथा डांटने पर सहम जाता है।

- छठे माह- छठे माह में शिशु परिचित-अपरिचित में अंतर करने लगता है। वह परिचितों से डरता है।बड़ों के प्रति आक्रामक व्यवहार करता है। वह बड़ों के बाल, कपड़े, चश्मा आदि खींचने लगता है।

- नवं माह- नवे माह में शिशु दूसरों के शब्दों, हाव-भाव तथा कार्यों का अनुकरण करने का प्रयास करने लगता है।

- प्रथम वर्ष- 1 वर्ष की आयु में शिशु घर के सदस्यों से हिल-मिल जाता है। बड़ों के मना करने पर मान जाता है तथा परिचितों के प्रति भय तथा नापसंद दर्शाता है।

- द्वितीय वर्ष- 2 वर्ष की आयु में शिशु घर के सदस्यों को उनके कार्यों में सहयोग देने लगता है। इस प्रकार वह परिवार का एक सक्रिय सदस्य बन जाता है।

- तृतीय वर्ष- 3 वर्ष की आयु में शिशु अन्य लोगों के साथ खेलने लगता है। खिलौनों के आदान-प्रदान तथा परस्पर सहयोग के द्वारा व अन्य बालकों से सामाजिक संबंध बनाता है।

- चतुर्थ वर्ष- चौथे वर्ष के दौरान शिशु प्राइमरी विद्यालयों में जाने लगता है। वह नए-नए सामाजिक संबंध बनाता है तथा नए सामाजिक वातावरण में स्वयं को समायोजन करता है।

- पंचम वर्ष- वर्ष में शिशु में नैतिकता की भावना का विकास होने लगता है। वह जिस समूह का सदस्य होता है, उसके द्वारा स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरूप अपने को बनाने का प्रयास करता है।

- छठे वर्ष- छठे वर्ष में शिशु प्राथमिक विद्यालय में जाने लगता है। जहां उसकी औपचारिक शिक्षा का आरंभ हो जाता है तथा नवीन परिस्थिति उसे अनुकूलन करता है।

शेश्वावस्था में बालक के द्वारा किए जाने वाले उपरोक्त वर्णित सामाजिक व्यवहारों के अवलोकन से स्पष्ट है कि जन्म के उपरांत धीरे-धीरे बालक के समाजीकरण होता है। जन्म के समय शिशु सामाजिक प्राणी नहीं होता है, परंतु अन्य व्यक्तियों के संपर्क में आने पर उसके समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है।

किशोरावस्था में सामाजिक विकास

किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियों का सामाजिक परिवेश अत्यंत विस्तृत हो जाता है। शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक परिवर्तनों के साथ-साथ उनके सामाजिक व्यवहार में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। किशोरावस्था में होने वाले अनुभव तथा बदलते सामाजिक संबंधों के फलस्वरुप किशोर-किशोरियों नए ढंग के सामाजिक वातावरण में समायोजित करने का प्रयास करते हैं। किशोरावस्था में सामाजिक विकास का स्वरूप होता है-

- समूहों का निर्माण- किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरिया अपने-अपने समूहों का निर्माण कर लेते हैं। परंतु यह समूह बाल्यावस्था के समूहों की तरह अस्थाई नहीं होते हैं। इन समूहों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना होता है। पर्यटन, नृत्य, संगीत, पिकनिक आदि के लिए समूह का निर्माण किया जाता है। किशोर-किशोरियों के समूह अलग-अलग होते हैं।

- मैत्री भावना का विकास- किशोरावस्था में मैत्रीभाव विकसित हो जाता है। प्रारंभ में किशोर-किशोरों से तथा किशोरियां-किशोरियों से मित्रता करती है। परंतु उत्तर किशोरावस्था में किशोरियों की रुचि किशोरों से तथा किशोरों की रुचि किशोरियों से मित्रता करने की भी हो जाती है। वे अपने सर्वोत्तम वेशभूषा, श्रृंगार व सजधज के साथ एक दूसरे के समक्ष उपस्थित होते हैं।

- समूह के प्रति भक्ति- किशोरों में अपने समूह के प्रति अत्यधिक भक्तिभाव होता है। समूह के सभी सदस्यों के आचार-विचार, वेशभूषा, तौर-तरीके आदि लगभग एक ही जैसे होते हैं। किशोर अपने समूह के द्वारा स्वीकृत बातों को आदर्श मानता है तथा उनका अनुकरण करने का प्रयास करता है।

- सामाजिक गुणों का विकास- समूह के सदस्य होने के कारण किशोर-किशोरियों में उत्साह, सहानुभूति, सहयोग,

सद्भावना, नेतृत्व आदि सामाजिक गुणों का विकास होने लगता है। उनकी इच्छा समूह में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने की होती है, जिसके लिए विभिन्न सामाजिक गुणों का विकास करते हैं।

- सामाजिक परिपक्वता की भावना का विकास- किशोरावस्था में बालक-बालिकाओं में व्यस्क व्यक्तियों की भांति व्यवहार करने की इच्छा प्रबल हो जाती है। वे अपने कार्यों तथा व्यवहारों के द्वारा समाज में सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं। स्वयं को सामाजिक दृष्टि से परिपक्व मानकर वे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने का प्रयास करते हैं।

- विद्रोह की भावना- किशोरावस्था में किशोर-किशोरियों में अपने माता-पिता तथा अन्य परिवारजनों से संघर्ष अथवा मतभेद करने की प्रवृत्ति आ जाती है। यदि माता-पिता उनकी स्वतंत्रता का हनन करके उनके जीवन को अपने आदर्शों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न करते हैं अथवा उनके समक्ष नैतिक आदर्शों का उदाहरण देकर उनका अनुकरण करने पर बल देते हैं, तो किशोर किशोरियों विद्रोह कर देते हैं।

- व्यवसाय चयन में रुचि- किशोरावस्था के दौरान किशोरों की व्यावसायिक रुचियां विकसित होने लगती हैं। अपने भावी व्यवसाय का चुनाव करने के लिए सदैव चिंतित से रहते हैं। प्रायः किशोर अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा तथा अधिकार संपन्न व्यवसायों को अपनाना चाहते हैं।

- बर्हिमुखी प्रवृत्ति- किशोरावस्था में बर्हिमुखी प्रवृत्ति का विकास होता है। किशोर-किशोरियों को अपने समूह के क्रियाकलापों तथा विभिन्न सामाजिक क्रियाओं में भाग के अवसर मिलते हैं, जिसके फलस्वरूप उनमें बर्हिमुखी रुचियां विकसित होने लगती हैं।

बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

बाल्यावस्था में सामाजिकरण की गति तीव्र हो जाती है। बालक वाय वातावरण के संपर्क में आता है। जिसके फलस्वरूप उसका सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है। बालव्यस्था में होने वाले सामाजिक विकास को इस ढंग से व्यक्त किया जा सकता है-

- बालक किसी न किसी टोलि या समूह का सदस्य बन जाता है। यह टोली अथवा समूह ही उसके खेलों, वस्त्रों की पसंद तथा अन्य उचित-अनुचित बातों का निर्धारण करते हैं।

- समूह के सदस्य के रूप में बालक के अंदर अनेक सामाजिक गुणों का विकास होता है। उत्तरदायित्व कुमार सहयोग, सहनशीलता, सद्भावना, आत्म नियंत्रण, न्याय प्रियता आदि सामाजिक गुण बालक में धीरे-धीरे उदित होने लगते हैं।

- इस अवस्था में बालक तथा बालिकाओं की रचनाओं में स्पष्ट अंतर दृष्टिगोचर होता है।

- बाल्यावस्था में बालक प्राय घर से बाहर रहना चाहते हैं, और उसका व्यवहार शिष्टतापूर्ण होता है।

- इस अवस्था में बालक में सामाजिक स्वीकृति तथा प्रशंसा पाने की तीव्र इच्छा होती है।

- प्यार तथा स्नेह से वंचित बालक इस आयु में प्रायः उद्दंड हो जाते हैं।

- बाल्यावस्था में बालक मित्रों का चुनाव करते हैं। वे प्रायः कक्षा के सहपाठियों को अपना घनिष्ठ मित्र बनाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस अवस्था में बालक के सामाजिक जीवन का क्षेत्र कुछ विस्तृत हो जाता है जिसके फलस्वरूप बालक-बालिकाओं के समाजीकरण के अवसर तथा संभावनाएं बढ़ जाती हैं।

2. विषय**:** बालक के सामाजिक विकास में घर विद्यालय तथा समुदाय का योगदान

- <u>बालक के विकास में घर का योगदान**:-**</u>

    1. घर बालक की प्रथम पाठशाला है। वह घर में सभी गुण सकता है। जिसकी पाठशाला में आवश्यकता होती है ।
    2. बालकों को घर पर नैतिकता एवं सामाजिकता का प्रशिक्षण मिलता है।
    3. सामाजिक तथा अनुकूलन के गुण विकसित करता है।
    4. सामाजिक व्यवहार अनुकरण करता है।
    5. सामाजिक नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करने में घर का योगदान मुख्य है।
    6. उत्तम आदतों एवं चरित्र के विकास में योग देता है।
    7. रूचि अभिरुचि तथा प्रवृत्तियों का विकास होता है।
    8. बालक की व्यक्तित्व का विकास होता है।
    9. प्रेम की शिक्षा मिलती है।
    10. सहयोग, परोपकार, सहिष्णुता, कर्तव्य पालन के गुण विकसित होते हैं ।
    11. घर बालक को समाज में व्यवहार करने की शिक्षा देता है।

- <u>बालक के विकास में विद्यालय का योगदान</u>

    1. बालकों को जीवन की जटिल परिस्थितियों का सामना करने योग्य बनाता है।
    2. सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करता है तथा उसे अगली पीढ़ी में हस्तांतरित करता है।
    3. विद्यालय, बालकों को घर तथा संसार से जोड़ने का कार्य करते हैं।
    4. व्यक्तित्व का सामंजस्य पूर्ण विकास करने में विद्यालय का महत्वपूर्ण योगदान है।
    5. विद्यालय में समाज के आदर्शों, विचारधाराओं का प्रचार होता है तथा अशिक्षक नागरिकों के निर्माण में योग देता है।

6. मनोविज्ञान में बालक के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव लाने की सहायता दी है। इसीलिए विद्यालय सूचना के बजाय बालकों को अनुभव प्रदान कराते हैं।

7. आधुनिक विद्यालयों में बालकों का दृष्टिकोण विश्व के संदर्भ में विकसित किया है।

8. आज के विद्यालय, बालक के विकास के लिए विशेष वातावरण प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। पवित्र वातावरण में बालक में पवित्र भावनाओं का सृजन होता है। व्यक्तित्व में संतुलन उत्पन्न होता है।

9. आज विद्यालय, सामुदायिक केंद्र के रूप में विकसित हो रहे हैं। यह लघु समाज है।

10. थॉमसन के अनुसार- "विद्यालय, बालकों का मानसिक, चारित्रिक, सामुदायिक, राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय विकास कराता है तथा स्वस्थ रहने का प्रशिक्षण देते हैं।"

- <u>बालकों के विकास में समुदाय का योगदान</u>

1. सामाजिक प्रभाव- समुदाय का प्रत्यक्ष प्रभाव बालक के सामाजिक विकास पर पड़ता है यहां उसका सामाजिकरण होता है अधिकार एवं कर्तव्य के ज्ञान के साथ-साथ स्वतंत्रता के अनुशासन की जानकारी भी होती है।

2. राजनीतिक प्रभाव- समुदाय, बालक पर राजनीतिक प्रभाव भी डालता है। विद्यालयों में छात्र संघों के माध्यम से राजनीतिक संरचना का अनुभव मिलता है तथा समाज के राजनीतिक वातावरण के लिए तैयार हो जाते हैं।

3. आर्थिक प्रभाव- समुदाय की आर्थिक स्थिति का प्रत्यक्ष प्रभाव विद्यालयों तथा बालकों पर प्रकट होता है। संपन्न समुदायों में विद्यालय आकर्षक होते हैं और उसमें पढ़ने वाले छात्रों को सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है। अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का स्तर जिला परिषदों के विद्यालयों से इसी कारण भिन्न होता है।

4. सांस्कृतिक प्रभाव- प्रत्येक प्रत्येक समुदाय की अपने सांस्कृतिक होती है और उसका प्रभाव वहां के विद्यालयों तथा छात्रों पर पड़ना स्वाभाविक है बोलचाल, व्यवहार, शब्दावली तथा शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

5. सांप्रदायिक प्रभाव- समुदायों में यदि एक से अधिक संप्रदायों के लोग रहते हैं और उसमें समर सप्ताह नहीं है तो ऐसे समाज में विद्यालयों का वातावरण दूषित हो जाता है।

6. सार्वभौमिक मांग- समुदाय, विद्यालय तथा शिक्षा की सार्वभौमिक मांग की पूर्ति करते हैं। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए विद्यालयों की मांग बढ़ रही है और समुदाय उसे पूरा कर रहे हैं।

7. प्रारंभिक शिक्षा का विकास- सामुदायिक कार्य अपने छोटे छोटे बालकों के लिए समुदाय परिसर में विद्यालय खुलता है इस प्रकार उनकी प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था करता है।

8. माध्यमिक शिक्षा का विकास- समुदाय का प्रभाव माध्यमिक शिक्षा पर भी देखा जाता है देश में माध्यमिक शिक्षा के विकास में समुदायों का योगदान प्रमुख है।

9. उच्च शिक्षा- भारतीय समुदायों ने उच्च शिक्षा के विकास पर भी बल दिया है आज उच्च शिक्षा स्थानीय

आवश्यकता हो तथा साधनों के अनुसार दी जाती है।

3. विषय**:** भावनाओं का विकास**;** भावनाओं का क्रियाकलाप

जीवन में बौद्धिक विकास से ज्यादा जरूरी है भावनात्मक विकास। सुख-शांति हासिल करने और सफल व सार्थक जीवन जीने के लिए भावनात्मक विकास के लक्ष्य पर ध्यान देना जरूरी है ताकि हर व्यक्ति अपनी भावनाओं पर नियंत्रण कर सके। जैसे मजबूत नींव पर बहुमंजिले भवन की स्थिरता बनी रहती है वैसे ही भावना हमारे जीवन की नींव है। हमारी भावना जितनी सकारात्मक और नियंत्रित होगी हमारा जीवन उतना ही सफल और सार्थक बनेगा। भावनाओं पर नियंत्रण से ही जीवन लड़खड़ा ने लगता है, तभी तो आए दिन जीवन में भावनात्मक समस्याएं बढ़ती हुई नजर आ रहे हैं। आपके व्यवहार में आपकी भावनाएं जैसे क्रोध, ईर्ष्या, उल्लास, खुशी, निराशा, पीड़ा कैसे अभिव्यक्त होती है इसका सीधा प्रभाव मनुष्य के अवचेतन मन पड़ता है। आपका व्यवहार खींचे हुए फोटो की तरह मनुष्य के अवचेतन मन में फीड हो जाता है। दूसरी बात आप क्रोध और हर्ष की स्थिति में दूसरों के साथ कैसा बर्ताव करते हैं, इसका भी प्रभाव आपके भावनात्मक विकास पर पड़ता है। आज यह मुद्दा चिंता का विषय बनता जा रहा है कि व्यक्ति का अपनी भावनाओं पर नियंत्रण नहीं है। इन्हीं स्थितियों में व्यक्ति निराशा से अपने जीवन को कुंठित कर देता है, क्योंकि वह ईर्ष्या, क्रोध जैसी नकारात्मक भावनाओं का सामना नहीं कर पाता।

भावनात्मक प्रतिभा के विकसित न होने के कारण ही भावना के प्रवाह में व्यक्ति अपने को नहीं संभाल पाता। नतीजतन अनहोनी घटनाएं दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। यह घटनाएं हमें चेतावनी देती है कि आधुनिक मनुष्य किस भावदशा में अपनी जिंदगी जी रहे हैं। जेट्युग में जीने वाले व्यक्ति के बौद्धिक विकास का स्तर जो अच्छी तरह बढ़ रहा है, पर भावनात्मक विकास का स्तर घट रहा है। इसके कारण उसके जीवन में एक ठहराव-सा आ जाता है। उसे क्या करना है, कैसे करना है, इस तरह कि वह कोई प्लानिंग ही नहीं कर पाता। ऐसा लगता है निषेधात्मक विचारों का कुछ ज्यादा ही दबाव मनुष्य के जीवन पर आ जाता है। इस कारण वह किसी के साथ सही तरीके से न रिश्ते निभा पाता है और न ही तालमेल बिठा पाता है। तभी तो आज भावनात्मक विकास का महत्व बढ़ रहा है।

भावनाओं का कोई निश्चित वर्गीकरण मौजूद नहीं है, हालांकि कई वर्गीकरण प्रस्तावित किए गए हैं। इनमें से कुछ वर्गीकरण है:

- 'संज्ञानात्मक' बनाम 'गैर-संज्ञानात्मक' भावनाएं
- 'स्वाभाविक' भावनाएं बनाम 'संज्ञानात्मक' भावनाएं
- बुनियादी बनाम जटिल यहां जहां मूल भावनाएं और अधिक जटिल हो जाती हैं।
- अवधि के आधार पर वर्गीकरण कुछ भावनाएं कुछ सेकेंड की अवधि के लिए होती हैं। (उदाहरण के लिए, आश्चर्य) जबकि कुछ कई वर्षों तक की होती है (उदाहरण के लिए, प्यार)

भावना और भावना के परिणामों के बीच संबंधित अंतर मुख्य व्यवहार और भावनात्मक अभिव्यक्ति है। अपनी भावनात्मक स्थिति के परिणाम स्वरुप अक्सर लोग कई तरह की अभिव्यक्तियां करते हैं, जैसे रोना, लड़ना या घृणा करना। यदि कोई बिना कोई संबंधित अभिव्यक्ति के भावना प्रकट करें, तो हम मान सकते हैं कि भावनाओं की अभिव्यक्ति की आवश्यकता नहीं है। न्यूरोसाइंटिफिक (स्नायुविज्ञान) शोध से पता चलता है कि एक "मैजिक क्वाटर सेकंड" होता है जिसके दौरान भावनात्मक प्रतिक्रिया बनने से पहले विचार को जाना जा सकता है। उस पल में व्यक्ति भावना को नियंत्रित कर सकता है।

[जैम्स-लैंग सिद्धांत] बताता है कि शारीरिक परिवर्तनों से होने वाले अनुभवों के कारण बड़े पैमाने पर भावनाओं की अनुभूति होती है। भावनाओं की प्रति क्रियात्मक दृष्टिकोण, (उदाहरण के लिए, निको फ्रिजदा और फ्रितास-मेगलहेस) से पता चलता है कि भावनाएं किसी विशेष क्रिया के फलस्वरूप एक विषय के रूप में सुरक्षित रखने के लिए उभरी है।

4. विषय: वाणी व भाषा की विशेषताएं

इंसान की सफलता और असफलता उसकी वाणी पर निर्भर करता है। अपनी वाणी से इंसान किसी का भी मन मोह लेता है, तो किसी को अपनी वाणी के कारण मुंह की खानी पड़ती है। महाभारत में यह बताया गया है कि इंसान को किस तरह से बात करनी चाहिए। कैसे कोई अपनी बातों से लोगों के मन को मोह सकता है। बोलते समय महाभारत के इन चार बातों को हमेशा ध्यान रखना चाहिए।

<u>वाणी की विशेषताएं:-</u>

- वाणी की पहली विशेषता: आप कभी भी झूठ न बोलें, महाभारत में इसे पाप कहा गया है। मान्यता है कि महाभारत में जब युद्ध के दौरान युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य से झूठ बोला था तब उनका रथ धरती पर आ गया था। अतः मनुष्य को कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिए। इस बुराई से इंसान के सभी रिश्ते टूट जाते हैं।
- वाणी की दूसरी विशेषता: ज्यादा बोलने से कोई भी ज्यादा जानकार नहीं होता है। अतः इंसान को व्यर्थ बोलने की अपेक्षा चुप रहना ज्यादा बेहतर है। कई बार ज्यादा बोल ने वाले लोगों को कोई नहीं सुनना चाहता है। उन्हें लोग पसंद भी नहीं करते हैं इसलिए फालतू बातें करने से बेहतर है काम की बातें करें।
- वाणी की तीसरी विशेषता: यह है कि हमें धर्म सम्मत यानी धर्म के अनुसार ही बात करनी चाहिए। अधर्म की बात से मनुष्य का नाश होता है। जो इंसान धर्म का ज्ञान दूसरों को देते हैं वे समाज में श्रेष्ठ स्थान पाते हैं।
- वाणी की चौथी विशेषता: यह है कि इंसान को हमेशा प्रिय बोलना चाहिए। इससे आपके कम दुश्मन होंगे। दूसरों को ठेस पहुंचाने वाली भाषा शब्द का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार हमें झूठ बोलने से बचना चाहिए, व्यर्थ की बात नहीं करनी चाहिए, धर्म सम्मत बात करनी चाहिए और हमेशा प्रिय बोलना चाहिए।

<u>भाषा की विशेषताएं:-</u>

जब हम भाषा का संदर्भ मानवीय भाषा से लेते हैं, तो यह जाना आवश्यक हो जाता है कि मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषताएं या अभिलक्षण कौन-कौन से हैं। ये अभिलक्षण ही मानवीय भाषा को अन्य भाषिक संदर्भों से पृथक करते हैं। हॉकीट ने भाषा के सात अभिलक्षणों का वर्णन किया है। अन्य विद्वानों ने भी अभिलक्षणों का उल्लेख करते हुए आठ या नौ तक संख्या मानी है। मूल रूप से 9 अभिलक्षणों की चर्चा की जाती है-

- यादृक्छिक्ता:- "यादृक्छिक्ता" का अर्थ है– माना हुआ। यहां मानने का अर्थ व्यक्ति द्वारा नहीं वरन एक विशेष समूह द्वारा मानना है। एक विशेष समुदाय किसी भाव या वस्तु के लिए जो शब्द बना लेता है उसका उस भाव से कोई संबंध नहीं होता। यह समाज की इच्छानुसार माना हुआ संबंध है। इसलिए उसी वस्तु के लिए भाषा में दूसरा शब्द प्रयुक्त होता है। भाषा में यह यादृक्छिक्ता शब्द और व्याकरण दोनों में मिलती है। अतः यादृक्छिकता भाषा का महत्वपूर्ण अभिलक्षण है।
- सृजनात्मकता: मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषता उसकी सृजनात्मकता है।अन्य जीवों में बोलने की प्रक्रिया में परिवर्तन नहीं होता पर मनुष्य शब्दों और वाक्य-विन्यास की सीमित प्रक्रिया से नित्य नए-नए प्रयोग करता रहता है। सीमित शब्दों को ही भिन्न-भिन्न ढंग से प्रयुक्त कर वह अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। यह भाषा की सृजनात्मकता के कारण ही संभव हो सका है। सृजनात्मकता को ही उत्पादकता भी कहा जाता है।
- अनुकरणग्राहता: मानवेतर प्राणियों की भाषा जन्मजात होती है तथा वे उस में अभिवृद्धि या परिवर्तन नहीं कर सकते हैं, किंतु मानवीय भाषा जन्मजात नहीं होती। मनुष्य भाषा को समाज में अनुकरण से धीरे-धीरे सीखता है। अनुकरण ग्रह्य होने के कारण ही मनुष्य एक से अधिक भाषाओं को भी सीख लेता है। यदि भाषा अनुकरण ग्रह्या न होती तो मनुष्य जन्मजात भाषा तक ही सीमित रहता।
- परिवर्तनशीलता: मानव भाषा परिवर्तनशील होती है। वही शब्द दूसरे युग तक आते-आते नया रूप ले लेता है।

पुरानी भाषा में इतने परिवर्तन हो जाते हैं कि नई भाषा का उदय हो जाता है। संस्कृत से हिंदी तक की विकास यात्रा भाषा की परिवर्तनशीलता का उदाहरण है।

- विविक्तता: मानव भाषा विच्छेद है। उसकी संरचना के घटकों से होती है। ध्वनि से शब्द और शब्द से वाक्य विच्छेद घटक होते हैं। इस प्रकार इकाइयों का योग होने के कारण मानव भाषा को विविक्त कहा जाता है।
- द्वैतता: भाषा में किसी वाक्य में दो स्तर होते हैं। प्रथम स्तर पर सार्थक इकाई होती है और दूसरे स्तर पर निरर्थक। कोई भी वाक्य इन दो स्तरों के योग से बनता है। अतः इसे द्वैतता कहा जाता है। भाषा में प्रयुक्त सार्थक इकाइयों को रूपिम और निरर्थक इकाइयों स्वनिम कहा जाता है। स्वनीम निरर्थक इकाइयां होने पर भी सार्थक इकाइयों का निर्माण करती है। इसके साथ ही ये निरर्थक इकाइयां अर्थ भेदक भी होती है। जैसे क+अ+र+अ में चार स्वनिम है जो निरर्थक इकाइयां है, पर "कर" रूपिम सार्थक इकाई है। इसे ही ख+अ+र+अ कर दें तो खर रूपिम बनेगा किंतु 'कर' और 'खर' में अर्थ भेदक इकाई रुपिम नहीं स्वनिम क और ख है। इस प्रकार रूपिम अगर अर्थद्योतक इकाई है तो स्वनिम अर्थ भेदक। इन दो स्तरों से भाषा की रचना होने के कारण भाषा को द्वैत कहा गया है।
- भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन: भाषा में दो पक्ष होते हैं – वक्ता और श्रोता। वार्ता के समय दोनों पक्ष अपनी भूमिका को परिवर्तित करते रहते हैं। वक्ता श्रोता और श्रोता वक्ता होते रहते हैं। इसे ही भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन कहते हैं।
- अंतरणता: मानव भाषा भविष्य एवं अतीत की सूचना भी दे सकती है तथा दूरस्थ देश का भी। इस प्रकार अंतरण की विशेषता केवल मानव भाषा में है।
- असहजवृतिक्ता: मानवेतर भाषा प्राणी की सहजवृत्ति आहार निद्रा भय, मैथुन से ही संबंध होती है और इसके लिए वे कुछ ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। किंतु मानव भाषा सहजवृत्ति नहीं होती है। वह सहजात वृत्तियों से संबंधित नहीं होती। भाषा के ये अभिलक्षण मानवीय भाषा को अन्य ध्वनियों या मानवेत्तर प्राणियों से अलग करने में समर्थ है।

5. भाषा विकास का क्रम अवस्थाएं एवं प्रभावित करने वाले कारक

भाषा का अर्थ होता है – कही हुई चीज। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भाषा दूसरों तक विचारों को पहुंचाने की योग्यता है। इसमें विचार-भाव के आदान-प्रदान के प्रत्येक साधन सम्मिलित किए जाते हैं। जिसमें विचारों और भावों के प्रतीक बना लिए जाते हैं जिससे कि आदान-प्रदान के व्यापक रूप में भिन्न रूपों जैसे लिखित, बोले गए, सांकेतिक, मौखिक, इंगित प्रहसन तथा कला के अर्थ बताए जाते हैं।

भाषा विकास: भाषा विकास बौद्धिक विकास की सर्वाधिक उत्तम कसौटी मानी जाती है। बालक को सर्वप्रथम भाषाज्ञान परिवार से होता है। कार्ल सी गैरिसन के अनुसार "स्कूल जाने से पूर्व बालकों में भाषा ज्ञान का विकास उनके बौद्धिक विकास के सबसे अच्छी कसौटी है। भाषा का विकास भी विकास के अन्य पहलुओं के लाक्षणिक सिद्धांतों के अनुसार होते हैं। यह विकास परिपक्वता तथा अधिगम दोनों के फलस्वरुप होता है और इसमें नई अनुप्रियाएं सीखनी होती है और पहले किसी की सीखी हुई अनुक्रियाओं का परिष्कार भी करना होता है।

भाषा विकास का क्रम:-

भाषा विकास क्रमागत बिंदुओं पर आधारित है –

1. बाल्यावस्था
2. पूर्व शैशवावस्था
3. मध्य एवं अपरांह शैशवावस्था
4. किशोरावस्था

शैशवावस्था: यह तथ्य सर्वविदित है कि शैशवावस्था मनुष्य की सबसे सक्रिय कम - अवधि है। इस अवस्था में मस्तिष्क की सतर्कता, ज्ञानेंद्रियों की तेजी, सीखने और समझने की अधिकता अपने चरमोत्कर्ष पर होती है। फ्रायड के अनुसार मनुष्य

शिशु जो कुछ बनता है जीवन के प्रारंभिक चार-पांच वर्षों में ही बन जाता है। भाषा को क्रमानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है।

रुदन:- चूंकि बोलना एक लंबी एवं जटिल प्रक्रिया के बाद सीखा जाता है। अतएव उसका प्रारूप हमें रुदन अथवा चीखने चिल्लाने में मिलता है। रिबेल के अनुसार, रुदन प्रारंभ में संकट कालीन होता है। यह अनियमित तथा अनियंत्रित होता है। अतः रुदन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जो शिशु अकारण ही करता है। स्टीवर्ट के अनुसार, जीवन के प्रारंभिक दिनों में शिशु रुदन भिन्न मात्रा में पाया जाता है और वह दूसरे सप्ताह में प्रकट होता है। तीसरे सप्ताह में स्वार्थ वश रूदन कम हो जाता है। रुदन तीव्रता तथा शिशु के विचारों तथा भावों को अभिव्यक्त करता है। यह रुदन पीड़ा, तेज रोशनी, तीक्ष्ण आवाज, थकान, भूख आदि के कारण हो सकता है।

बलबलाना: इरविन महोदय के अनुसार रुदन में सुस्पष्ट आवाजें पाई जाती है। यह ध्वनि चौथे-पांचवें मास के पश्चात स्पष्ट होना प्रारंभ हो जाती है। बलबलाने में जीवन के प्रथम वर्ष में स्वर ध्वनि सुनाई देती है। अ- आ- इ- ई- ए- ऐ इसके साथ ही इसे समय तक जबकि आगे के कुछ दांत आ जाते हैं जो होठों के मेल से शिशु ब- ल- त- द- म जैसे व्यंजनों का प्रकट करता है।

इंगित करना: भाषाविदो ने इंगित करने को भाषा विकास का ततशीय सोपान कहा। जर्सील्ड मैकाथ्रीन ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि इसके द्वारा शिशु दूसरे को अपने भाव विचार समझाता है। इसे लेरिक ने संपूर्ण शरीर की भाषा भी माना है। शिशु 'हां' या 'ना' की मुद्रा में गर्दन हिलाकर भी उत्तर देता है।

बोलना: भाषा प्रयोग की यह अंतिम अवस्था है। इसका आरंभ एक डेढ़ वर्ष के करीब होता है। भाषा बोलना भी एक कौशल है अतः इसे अभ्यास की आवश्यकता होती है। यह शारीरिक अवयवों की पुष्टता पर निर्भर करता है। शुरू में निरर्थक शब्द बोले जाते हैं जैसे वा, ला, मा, दा, ना इत्यादि। परंतु क्रमशः साहचर्य के नियमों के कारण निरर्थक शब्दों में सार्थकता आ जाती है और वे सोद्येश्य प्रयुक्त होते हैं। शब्द बोलने में एक समस्या उच्चारण की होती है। शुरू में बालक अनुकरण सही उच्चारण सीखता है। शैशवावस्था में उच्चारण योग्यता लचीली मानी जाती है।

भाषा के ध्वनि की पहचान- जैसे पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि शब्दों को सीखने से पहले शिशु भाषा की ध्वनि में अंतर करना सीख जाता है। जैसे रा तथा ला में अंतर स्पष्ट कर लेते हैं।

प्रथम शब्द- 8 से 12 माह की आयु में बच्चा प्रथम शब्द बोलता है। इससे पूर्व वह बलबलाना, इंगन आदि अन्य भाव भंगिमाओं के द्वारा अपनी भावाभिव्यक्ति करता है। ब्रेकों के अनुसार बोलना शिशु के संप्रेषण की विभिन्न अवस्थाओं का अगला पड़ाव है। शिशु सर्वप्रथम अपने परिवार से जुड़े व्यक्तियों जिसमें उसका भावनात्मक लगाव होता है, उनको पुकारना प्रारंभ करता है। जैसे बड़ों को दादा, पालतू जानवर को किटी, खिलौनों को टाम, खाने को दूध इत्यादि।

शब्द युग्म का उच्चारण- 18 से 24 माह की आयु तक शिशु पारयः शब्दों युग्मों को बोलना प्रारंभ कर देता है यह शब्द युग्म वे अपनी इंगन, कुशलता, शारीरिक इंगन तथा सिर के विभिन्न मुद्राओं के साथ बोलते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार है –

स्थान पहचानना – वहां पुस्तक
दोहराना – दूध और
किसी वस्तु वस्तु के प्रति विशेष लगाव – मेरा खिलौना
वस्तु की पहचान – कार बड़ी
क्रिया प्रतिक्रिया – तुम्हें मारूंगा
प्रिय वस्तु – चाकू काटो
प्रश्न – बाल कहां

शिशुओं की शब्दावली का अध्ययन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों (स्मिथ एवं सिशोर) द्वारा हुआ है तथा कुछ इस प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

आयु	शब्द संख्या
8 मास	0
10 मास	1
1 वर्ष	3
1-3 वर्ष	19
1-6 वर्ष	22
1-9 वर्ष	118
2 वर्ष	272
4 वर्ष	1550 (स्मिथ)
4 वर्ष	1560 (सीशोर)
5 वर्ष	2072 (स्मिथ)
5 वर्ष	9600 (सीशोर)
6 वर्ष	2562 (स्मिथ)

उपर्युक्त तालिका से शैशवावस्था में शब्दों की संख्या मालूम होती है जो शिशु प्रायः उच्चारित करता है।

बाल्यावस्था में भाषा विकास**:-** बाल्यावस्था जन्मो प्रांत मानव विकास की दूसरी अवस्था है जो शैशवावस्था की समाप्ति के उपरांत प्रारंभ होती है। बाल्यावस्था में प्रवेश करते समय बालक अपने वातावरण से काफी सीमा तक परिचित हो जाता है। इस अवस्था में वह व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्यवहार करना सीखना प्रारंभ करता है। तथा उसकी औपचारिक शिक्षा का प्रारंभ भी इसी अवस्था में होता है। बाल्यावस्था में भाषा विकास तीव्र गति से होता है। शब्द भंडार में वृद्धि होती है बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में भाषा का विकास तेजी से होता है। वाक्य रचना एवं वाकपटुता में भी बालिकाएं श्रेष्ठ होती हैं।

सीशोर ने बालक बालिकाओं के शब्द भंडार का अध्ययन कर के बताया कि उनके शब्दों की संख्या 10-12 साल तक 35,000 के लगभग पहुंच जाती है।

आयु	शब्दों की संख्या
7 साल	21200
8 साल	26300
10 साल	34300
12 साल	50500

उपर्युक्त सारिणी देखने से ज्ञात होता है कि बाल्यावस्था में क्रमशः 1 वाक्य में अधिक शब्द होते हैं। बालक अब मिश्रित एवं संयुक्त वाक्य का प्रयोग अधिक करता है ना की सरल वाक्यों का।

किशोरावस्था में भाषा विकास**:-** किशोरावस्था जन्मो प्रांत मानव विकास की तटीय अवस्था है जो बाल्यावस्था की समाप्ति के उपरांत प्रारंभ होती है तथा प्रौढ़ावस्था की प्रारंभ होने तक चली है। यद्यपि व्यक्तिगत भेदों, जलवायु आदि के कारण किशोरावस्था की अवधि में कुछ अंतर पाया जाता है फिर भी प्रायः 12 से 18 वर्ष की आयु के बीच की अवधि को किशोरावस्था कहा जाता है। इस अवस्था को बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के बीच का संधिकाल माना जाता है।

चूंकि भाषा का विकास इस अवस्था में संप्रतयात्मक स्तर पर निर्भर होता है, अतः किशोर किशोरियों में कल्पनाशील साहित्य के अध्ययन एवं सशजन की अभीकार्य होती है, प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग भी किशोरवर्ग अधिक करता है। अतः इनके शब्द भंडार की विविधता तथा प्रचुरता स्वभावतः पाई जाती है। किशोरावस्था में भाषा के विकास में आदत एवं बुद्धि का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है, आदत एक प्रकार चेतन सजगता एवं अंतर्दृष्टि की ओर संकेत करती है। इस क्षमता के कारण किशोर समस्याओं की परख करता है और उपयुक्त भाषा का प्रयोग करता है। यदि उपयुक्त भाषा नहीं मिलती तो वह उन्हें तोड़-मरोड़ के नए शब्द गढ़ता है। यहीं पर उसकी बुद्धि, उसकी कल्पना और उसकी आदत या अभ्यास भाषा के विकास में अपना योगदान देते हैं।

भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारक बुद्धि**:-**

भाषा की क्षमता एवं योग्यता का संबंध हमारी बुद्धि से अटूट होता है। भाषा की कुशलता भी उन बालकों में अधिक होती है, जो बुद्धि में अधिक होते हैं। बर्ट ने अपने "बैकवार्ड चाइल्ड" में संकेत किया है जिन बालकों की बुद्धि क्षीण होती है वे भाषा की योग्यता भी कम रखते हैं और पिछड़े भी होते हैं। तीक्ष्ण बुद्धि बालक भाषा का प्रयोग उपयुक्त ढंग से करते हैं।

जैविकीय कारक**:-** मस्तिष्क की बनावट भी भाषा विकास को प्रभावित करते हैं। भाषा बोलने तथा समझने के लिए स्नायु तंत्र तथा वाक् यंत्र की आवश्यकता होती है। बहुत हद तक इनकी बनावट तथा कार्य शैली तथा स्नायु नियंत्रण भाषा को प्रभावित करते हैं।

वातावरण कारक**:-** भाषा संबंधी विकास पर व्यक्ति जिस स्थान और परिस्थिति में रहता है, आचरण करता है। विचारों का आदान-प्रदान करता है उसमें भाषा का विकास होता है। उदाहरण स्वरूप निम्न श्रेणी के परिवार व समाज के लोगों में भाषा का विकास कम होता है क्योंकि उन्हें दूसरों के संपर्क में आने का अवसर कम मिलता है इसी प्रकार परिवार में कम व्यक्तियों के होने पर भी भाषा संकुचित हो जाती है।

विद्यालय और शिक्षक**:-** विद्यालय और शिक्षक भाषा विकास में महती भूमिका का निर्वाहन करते हैं। विद्यालय में विभिन्न विषयों एवं क्रियाओं का सीखना-सिखाना भाषा के माध्यम से होता है। इस प्रक्रिया में भाषा संबंधी विकास अच्छे से होता है।

व्यवसाय एवं कार्य**:-** ऐसे बहुत से व्यवसाय है जिनमें भाषा का प्रयोग अत्यधिक होता है। उदाहरण स्वरूप अध्यापन, वकालत, व्यापार कुछ ऐसा व्यवसाय हैं जिनमें भाषा के बिना कोई कार्य नहीं चल सकता। अतः इनके अंतर्गत सम्मिलित किया गया है। अभी प्रेरणा अनुबंधन तथा अनुकरण मनोवैज्ञानिक विचारों अनुसार भाषा संबंधी विकास अभिनंदन एवं अनुकरण पर निर्भर करता है। ज्ञात हुआ है कि बोलने वाले शिशु को प्रलोभन देकर स्पष्ट भाषा बनाया गया। एक दूसरे देशों को चित्र दिखाकर, उनके नाम याद कराए गए। यह अभिप्रेरणा के महत्व को प्रकट करते हैं। भाषण प्रतियोगिता में पुरस्कृत होने पर छात्र को अधिक प्रभावशाली भाषा का प्रयोग करने का अभिप्रेरणा मिलती है और धन की प्रक्रिया में प्रलोभन पुरस्कार या अभीप्रेरण के साथ इस प्रकार जोड़ा जाता है की प्रक्रिया पूरी हो जाती है।

अनुकरण वास्तव में एक सामान्य प्रकृति है जो सभी को अभी प्रेरित करती है अनुकरण की प्रविष्टि एक आंतरिक अभिप्रेरणा कक्षा में अध्यापक की स्पष्ट साहित्यिक तथा शुद्ध भाषा का अनुकरण सचेतन एवं अचेतन रूप में छात्र करते हैं तथा भाषा संबंधी विकास करने में सफल होते हैं।